तथा दोनों ही कर्मठता से कार्य करने में रुचि प्रदर्शित करते हैं तब वह विभाग उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर होता है किन्तु विपरीत विचारधाराओं या कार्यप्रणाली के मंत्री—लोक सेवक का एक विभाग में मिलन होता है तो नित्य संघर्ष तथा विवाद उत्पन्न होते रहते हैं। स्वतंत्रता के इन 50 वर्षों के पश्चात् भी भारतीय राजनेताओं तथा नौकरशाहों के मध्य मधुर तथा समन्वित सम्बन्धों का विकास नहीं हो पाया है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों में कार्यरत मंत्रियों तथा सचिवों के मध्य होने वाले विवाद प्राय: प्रकाश में आते रहते हैं।

अनेक राजनीतिज्ञ जिन्होंने सत्ता में रहते हुए मंत्री पद धारण किया है, ने अफसरशाही की कार्यप्रणाली के विरुद्ध टिप्पणियाँ की हैं। इनमें जवाहरलाल नेहरू, इन्दिरा गाँधी, राजीव गाँधी, देवीलाल, एच.डी. देवेगौड़ा, इन्द्रजीत गुप्त तथा भैरोसिंह शेखावत जैसे कुशल नेता भी सम्मिलित हैं। मंत्री—लोकसेवक के मध्य संघर्ष के कतिपय प्रकरण बहुत चर्चित रहे हैं। इनमें वित्तमंत्री टी.टी. कृष्णामाचारी तथा वित्त सचिव एच.एम. पटेल (1957) का बीमा निगम द्वारा शेयर खरीदने का प्रकरण, गृहमंत्री गुलजारी लाल नन्दा तथा गृह सचिव एल.पी. सिंह (1966) का आपसी असहयोग तथा रेल मंत्री के. हनुमन्तैया एवं रेलवे बोर्ड के सचिव बी.सी. गांगुली (1971) का रोचक तथा आश्चर्यजनक विवाद प्रमुख है। इस प्रकरण में मंत्री तथा सचिव के सम्बन्ध इस सीमा तक असहयोगी हो चुके थे कि मंत्री महोदय ने सचिव को दाँत में दर्द होने पर आधा दिन की छुट्टी न देना तथा एक बार रेलगाड़ी का वह डिब्बा ही गाड़ी से हटवा दिया था जिसमें सचिव (गांगुली) यात्रा करने वाले थे, जैसी हरकतें की थीं। राजस्थान के पूर्व सिंचाई मंत्री देवी सिंह भाटी तथा सिंचाई सचिव पी.के. देव के बीच हुआ विवाद भी काफी चर्चित रहा। श्री देव ने आरोप (6 दिसम्बर, 1997) लगाया था कि मंत्री महोदय ने उनके साथ सचिवालय में मारपीट की हाथ का अँगूठा तोड़ दिया। मुख्यमंत्री भैरोसिंह शेखावत के निर्देशों पर श्री भाटी ने इस्तीफा दिया तथा इस प्रकरण की सी.आई.डी. से जाँच शुरू हुई।

इसी प्रकार भारतीय रक्षा सेवाओं के इतिहास में प्रथम बार 30 दिसम्बर, 1998 को किसी नौसेनाध्यक्ष को सरकार ने बर्खास्त किया तो मंत्री एवं प्रशासनिक अधिकारी विवाद की गंभीरता सामने आयी। यद्यपि रक्षा अधिकारी लोक सेवक नहीं हैं किन्तु प्रकरण राजनेता तथा विशेषज्ञ सेवा के कार्मिक के सम्बन्धों का है। इस प्रकरण में भाजपा सरकार के रक्षामंत्री जॉर्ज फर्नांडीस ने आरोप लगाया था कि नौसेनाध्यक्ष एडमिरल विष्णु भागवत, केन्द्रीय मंत्रिमंडल के निर्णयों की अवहेलना कर रहे हैं तथा मनमर्जी करते हैं।

दूसरी ओर सरदार पटेल ने स्वयं यह स्वीकार किया था कि लोक सेवक ही भारतीय प्रशासन तंत्र तथा संविधान की रक्षा करने में सक्षम हैं किन्तु एक बार गुड़गाँव (तत्कालीन पंजाब) के जिला मजिस्ट्रेट का स्थानान्तरण करवाने में स्वयं श्री पटेल को अत्यधिक मानसिक तनाव तथा श्रम शक्ति व्यय करनी पड़ी थी।[5] इसी तरह प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि उच्च पदासीन आई.ए.एस. अधिकारी यह चाहते थे कि सरकार उनकी इच्छा से ही चलनी चाहिए अत: उन्हें इन अधिकारियों को नियंत्रित करने तथा अपनी नीतियों को क्रियान्वित करने में भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।[6]

मंत्री-लोक सेवक के मध्य इन विवादों को "राजनेता-नौकरशाह" अथवा "राजनीतिक कार्यपालिका-प्रशासनिक अधिकारी" विवाद के नामों से भी जाना जाता है। यद्यपि राजनीतिक मंत्री भी सरकारी कोष से वेतन लेने के कारण लोक सेवकों की ही श्रेणी में

आते हैं तथापि यहाँ परलोक सेवक से तात्पर्य प्रशासनिक कार्यपालिका में कार्यरत स्थायी अधिकारियों से है। प्रशासनिक तंत्र को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए ये दोनों ही समान भूमिका निर्वाहित करते हैं।

मंत्री-लोक सेवक में अंतर

क्र. सं.	कारक	मंत्री	लोकसेवक
1.	चयन	राजनीतिक दल के प्रमुख के द्वारा होता है।	योग्यता पर आधारित भर्ती प्रणाली से चयन होता है।
2.	कार्यावधि	राजनीतिक सत्ता के आधार पर निश्चित होती है जो प्राय: कुछ वर्षों की ही होती है।	लोक सेवक सरकार के स्थायी कार्मिक होते हैं।
3.	अनुभव	प्राय: नौसिखिए राजनेता भी मंत्री बना दिये जाते हैं जो प्रशासनिक कार्य प्रणाली से अनभिज्ञ होते हैं।	मंत्री के साथ बहुधा वरिष्ठ एवं अनुभवी सचिव ही नियुक्त किया जाता है।
4.	पदमुक्ति	मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री तथा उनकी राजनीतिक पार्टी पर अधिक निर्भर करती हैं।	एक निश्चित आयु पर लोक सेवकों को सेवानिवृत्ति होना पड़ता है।
5.	लोकप्रियता	जनता के द्वारा निर्वाचित होने के कारण मंत्री अधिक लोकप्रिय तथा प्रत्यक्षत: जनता के सामने होते हैं।	लोक सेवक प्राय: जनता से विलग तथा पर्दे के पीछे माने जाते हैं। यद्यपि जनसाधारण इनसे मिल सकता है।
6.	कार्यालय समय	मंत्री प्राय: राजनीतिक गतिविधियों से संलग्न रहने के कारण हमेशा एक निश्चित स्थान पर नहीं मिल पाते हैं।	लोकसेवक अपने निर्धारित कार्यालय में नियत समय पर उपलब्ध रहते हैं।
7.	कार्यकुशलता	मंत्री को प्रशासनिक कार्यों का प्रशिक्षण प्रदान नहीं किया जाता है।	लोक सेवक सम्बन्धित प्रशासनिक कार्य को करने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त होते हैं।

मंत्री-लोक सेवक संबंधों की समस्या भारत में ही नहीं वरन् अधिकांश देशों में व्याप्त है। मंत्री प्राय: राजनीतिक दल में प्रतिष्ठा, अनुभव, आस्था तथा जनता में लोकप्रियता के आधार पर मंत्रिमंडल में पद प्राप्त करते हैं। अधिकांश मंत्रियों को प्रशासनिक कार्यकलापों के निर्वहन में पूर्ण विशेषज्ञता प्राप्त नहीं होती है साथ ही मंत्री अपने राजनीतिक दल की मान्यताओं एवं कार्यक्रमों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहता है अत: वह अपने विभाग का अध्यक्ष होने के बावजूद भी पर्याप्त समय नहीं दे पाता है। दूसरी ओर मंत्री का सहयोगी एवं विभाग

का सचिव (लोक सेवक) प्रशासनिक कार्यकलापों में निपुण, पूर्णकालिक कार्यकर्ता तथा नौकरशाही से जुड़ा कार्मिक होता है। **मंत्री-लोकसेवक के मध्य होने वाले विवादों को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है—**

1. प्रशासनिक विशेषता—योग्यता पर आधारित भर्ती प्रणाली से प्रशासन में प्रवेश पाये हुए तथा आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त लोक सेवक प्रशासनिक कार्यों के विशेषज्ञ होते हैं। विभाग में कार्य करते हुए अधिकांश लोक सेवक उस विभाग की सूक्ष्मताओं, विशेषताओं एवं कमियों से भली-भाँति परिचित हो जाते हैं। नीति निर्धारण तथा कार्यक्रम निर्माण में लोक सेवक ही मंत्री को आवश्यक तथ्य, सूचना एवं परामर्श प्रदान करते हैं। बहुधा नये मंत्री, लोक सेवकों के समक्ष स्वयं को असहाय पाते हैं क्योंकि मंत्री पद धारण करने से पूर्व उन्हें किसी प्रकार का प्रशासनिक प्रशिक्षण प्रदान नहीं किया जाता है। ब्रिटेन के संदर्भ में **सिडनी लॉ** ने लिखा है—"वित्त मंत्रालय में द्वितीय श्रेणी के क्लर्क का पद प्राप्त करने के लिए एक नवयुवक को अंकगणित की परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ेगा, किन्तु वित्त मंत्री अधेड़ आयु का एक ऐसा सांसारिक व्यक्ति भी हो सकता है जो अंकों के विषय की उस थोड़ी बहुत जानकारी को भी भूल चुका है जो उसने स्कूल में प्राप्त की थी और उस मंत्री के सामने दशमलवों से भरे हिसाब का वर्णन, जब पहली बार रखा जाता है तो वह (मंत्री) उन छोटे-छोटे बिन्दुओं का अर्थ जानने के लिए उत्सुक हो जाता है।"

ब्रिटेन के इस संदर्भ जैसी ही स्थिति भारत में भी है। फील्ड मार्शल **सैम मानेकशा** ने जयपुर में पाँचवें खेलशंकर दुर्लभ जी स्मृति व्याख्यान देते हुए कहा था—"नेतृत्व की क्षमता के लिए पेशेवर दक्षता और ज्ञान अपरिहार्य है जिनका अर्जन जीवनपर्यन्त चलता रहता है। यदि सेना का आदमी "मोटर" और "मोर्टार" का अन्तर नहीं समझे, "गन" और "हाविट्जर" का भेद नहीं जाने तो इससे बुरी परिस्थितियाँ क्या होंगी ?" सेनाध्यक्ष बनने से पूर्व एक रक्षा मंत्री के साथ बीते हुए दिनों को याद करते हुए उन्होंने कहा—"एक बार मंत्री ने मुझसे पूछा, सैम, यह "हाविट्जर" क्या बला होती है। मैं जहाँ आता हूँ लोक यहीं पूछते हैं कि हाविट्जर क्या है ? इस पर मैंने (मानेकशा) उनसे कहा कि आप सेनाध्यक्ष से क्यों नहीं पूछ लेते ? ऐसा कहने पर रक्षा मंत्री बोले कि उनसे कैसे पूछूँ ? तुमसे तो इसलिए पूछ लिया कि तुम जानते हो मैं कितना अनजान हूँ।"[7] यद्यपि यह स्थिति सभी मंत्रियों के साथ नहीं है फिर भी अल्पावधि तक विभाग के शीर्ष पर रहने वाले मंत्रीगण विभाग की बारीकियों को समझने के लिए पर्याप्त समय नहीं दे पाते हैं क्योंकि मंत्री को राजनीतिक कार्यकलापों तथा जनसाधारण की इच्छाओं के अनुरूप सभा-समारोहों में भी व्यस्त रहना पड़ता है। मंत्री की अयोग्यताएँ ही उसे कई बार सचिव के सामने दयनीय बना देती है। **जॉर्ज बर्नार्ड शॉ** ने अपने नाटक "एप्पल कार्ट" की भूमिका में लिखा है—"हमारी (ब्रिटेन) राजनीतिक व्यवस्था में कठपुतली नाम की कोई वस्तु है तो वह है किसी सार्वजनिक विभाग का एक मंत्री।" अनपढ़ तथा अभिज्ञ मंत्रियों के प्रसंग भारतीय समाज में पर्याप्त मात्रा में सुने-कहे जाते रहे हैं लेकिन विगत एक दशक से इस सम्बन्ध में व्यापक परिवर्तन आए हैं।

इस समस्त प्रकार की विसंगतियों के बावजूद भी लोकसेवक, मंत्री के आदेशों की अवहेलना नहीं कर सकता है। यदि किसी मुद्दे पर लोकसेवक (सचिव) का दृष्टिकोण भिन्न है तो वह मंत्री को अधिक से अधिक गुण-दोष एवं परिणामों से अवगत करा सकता है किन्तु मंत्री को उसके निर्णय पर चुनौती नहीं दे सकता है।

2. अहं का टकराव—जनसाधारण से प्राप्त समर्थन के आधार पर निर्वाचित हुए सांसद अथवा विधायक जब मंत्री पद धारण करते हैं तो उनमें एक विशिष्ट मानसिकता विकसित हो जाती है। यह मानसिकता राजनीतिक दलों के कार्यकर्ताओं तथा जनसाधारण द्वारा भी पल्लवित की जाती है। इस तरह प्रशासनिक तंत्र में पद स्थापित लोक सेवक भी विशिष्ट अहं भाव से पीड़ित पाये जाते हैं। दोनों पक्षों में व्याप्त यह अहं जब अति का रूप ले लेता है तो संघर्ष की स्थिति बन जाती है। राजस्थान के मुख्य सचिव तथा एक कैबिनेट मंत्री के मध्य भी विवाद का कारण आपसी अहं रहा था। एक राजनीतिक दल के पदाधिकारी ने किसी ठेके में हुई अनियमितता में सम्बन्धित मंत्री को लिप्त मानते हुए मुख्यमंत्री को शिकायत की थी। मुख्य सचिव ने उस पत्र को उसी मंत्री के विभाग के सचिव के पास 'परीक्षण करने' हेतु अग्रेषित कर दिया था। यद्यपि जाँच के पश्चात् शिकायत सही नहीं पायी गई थी फिर भी मंत्री महोदय ने मुख्य सचिव के इस कृत्य को सही नहीं मानते हुए मुख्यमंत्री को अपनी आपत्ति पत्र द्वारा प्रकट की थी तथा मंत्री महोदय ने मुख्य सचिव को "बड़े बाबू" के समान माना था।[8] इसी प्रकार मध्यप्रदेश के एक मंत्री ने शासकीय अधिकारियों को "वेश्या" के समान मानते हुए विवादास्पद बयान दिया था जिसके कारण लोकसेवकों में आक्रोश व्याप्त हो गया था।

आपसी अहं में टकराव की समस्या तब अधिक विकट हो जाती है जबकि मंत्री एवं सचिव दोनों ही कुशाग्र बुद्धि के कुटिल इंसान हों। यदि किसी सचिव को पूर्व में शांत, अनुशासन पसंद तथा सीधे-सादे मंत्री के साथ कार्य करना पड़ा हो तत्पश्चात् नया मंत्री सर्वथा पृथक् व्यक्तित्व का हो तो संघर्ष अवश्यम्भावी हो जाता है क्योंकि लोक सेवक की कार्यशैली आधिपत्य सिद्ध करने की हो जाती है। बहुधा राजनीतिक मंत्रियों के पास सरकारी कर्मचारियों के स्थानान्तरण करने, उन्हें रद्द करने, पदोन्नति देने, नियुक्ति करने तथा अन्य लाभ पहुँचाने वाले प्रकरण आते रहते हैं। राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में मंत्री को इन प्रकरणों में अपने सहयोगियों की भावना तथा जनसाधारण में मंत्री की छवि के रूप में भी निर्णय लेने होते हैं। ऐसे में लोक सेवक प्राय: नियमों की दुहाई देकर मंत्री की आज्ञा का उल्लंघन करते हैं तो विवाद की स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। अब तो स्थितियाँ ऐसी बन चुकी हैं कि अधिकांश विभागों में कार्मिकों के स्थानान्तरण की सूची को मंत्री के द्वारा अन्तिम रूप दिया जाता है जो वस्तुत: लोकसेवक का कार्य है।

3. कार्यशैली एवं अभिवृत्ति—प्रशासनिक व्यवस्था में दो प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं। एक तो वे जो पूर्ण निष्ठा, ईमानदारी तथा परिश्रम के अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं तथा दूसरे वे जो केवल अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु भ्रष्ट आचरण का सहारा लेते हैं। यदि मंत्री तथा लोक सेवक दोनों ही ईमानदार तथा अनुशासन पसंद हों तो वह विभाग उन्नति की राह पर अग्रसर हो जाता है और यदि दोनों ही भ्रष्ट प्रकृति के हों तो वहाँ भ्रष्टाचार को मान्यता प्राप्त हो जाती है तथा रिश्वत तथाकथित "सुविधा शुल्क" के रूप में परिणित हो जाती है लेकिन मंत्री तथा लोक सेवक भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के हों तो संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। इसीलिए अधिकांश मुख्यमंत्री पद धारण करते ही अपनी पसंद का मुख्य सचिव नियुक्त करना चाहते हैं ताकि नई सरकार की इच्छानुरूप कार्यक्रम सम्पादित हो सकें।

लास्की ने मंत्री तथा लोक सेवक के सम्बन्ध मूलत: मंत्री के व्यक्तित्व के आधार पर आधारित माने हैं। उनके अनुसार मंत्री शक्तिशाली तथा लोकप्रिय व्यक्तित्व वाला हो तो वह

लोकसेवक के परामर्श के अनुसार निर्णय लेना आवश्यक नहीं समझता किन्तु भाग्य से सहारे चलने वाले मंत्रियों पर लोक सेवक हावी हो जाते हैं। इस संदर्भ में **रेमजे म्योर** का मत है कि—"जब तक मंत्री कोई स्वाभिमानी गधा न हो या असाधारण विवेक, शक्ति और साहस से परिपूर्ण व्यक्ति न हो तो सौ में से निन्यानवे प्रकरणों में वह लोकसेवक के विचार को ही स्वीकार कर लेता है तथा अंकित पंक्ति (फाइल) पर हस्ताक्षर कर देता है।" वस्तुतः सफल राजनेताओं में इस प्रकार के व्यक्ति नहीं मिलते हैं। वर्तमान में मंत्री-लोक सेवक के मध्य संघर्ष का कारण दोनों की कार्यशैली तथा अभिवृत्तियाँ हैं। बहुधा मंत्री कोई भी बड़ा प्रशासनिक निर्णय लेते समय उसका जनमत पर पड़ने वाले प्रभाव को प्रधानता देते हैं। जनसाधारण में अलोकप्रिय सिद्ध हो सकने वाले निर्णय प्रायः मंत्री नहीं लेते हैं जबकि लोक सेवक व्यवस्था तथा विकास को सुनिश्चित करने के लिए कठोर कदम उठाना आवश्यक समझते हैं।

इसी प्रकार मंत्री अपने चुनावी वायदों तथा जनता की माँग के आधार पर विकास कार्य करवाना चाहते हैं जबकि लोक सेवकों की कार्य प्रणाली नौकरशाही पर आधारित होती है जिसमें प्रत्येक तथ्य को तार्किकता एवं कानून की कसौटी पर परखा जाता है। लोकसेवकों में जहाँ एक ओर जनसाधारण से विलग रहकर कठोर रुख अपनाने की प्रवृत्ति पायी जाती है वहीं मंत्री जनसाधारण की इच्छाओं को सर्वोपरि समझते हुए उसी के अनुरूप कार्य करना चाहते हैं। राजनीतिज्ञों को अपने चुनावी क्षेत्र, मतदाता, हितसमूह तथा दल की मान्यताओं के अनुसार कार्य करना होता है जबकि ये बाध्यताएँ लोकसेवकों के साथ नहीं हैं। अपने हित समूह को लाभ पहुँचाने के लिए किंचित प्रकरणों में मंत्रियों द्वारा प्रशासनिक नियमों में परिवर्तन किये जाने के प्रसंग भी भारतीय प्रशासन में सुनने को मिले हैं। ऐसी परिस्थिति में लोक सेवक प्रायः उदासीन कार्यशैली अपना लेते हैं। सन् 1997 में कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री जे.एच. पटेल के विरुद्ध मुकदमा दायर करने हेतु आई.पी.एस. अधिकारी सी. दिनकर ने राज्यपाल श्री खुर्शीद आलम से अनुमति माँगी थी। श्री पटेल तथा दिनकर के मध्य काफी विवाद हुआ था। ज्ञातव्य है कि श्री दिनकर एक कुशल वरिष्ठ तथा प्रतिभावान अधिकारी होते हुए भी पदोन्नति में भेदभाव के शिकार हुए थे। मुख्यमंत्री श्री पटेल ने दिनकर पर "दिमाग खराब" होने का आरोप तक लगा दिया था।

4. जवाबदेयता की कमी—भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में यह एक गंभीर समस्या है। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि आज भी ब्रिटिश परम्पराएँ हमारे प्रशासन का अभिन्न अंग हैं। प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारियों को बार-बार एक विभाग से दूसरे विभाग में भेजने की प्रवृत्ति शासकों की ही देन है। वर्तमान में भी जारी इस परम्परा के कारण लोक सेवक दीर्घावधि एक विभाग में रह नहीं पाते हैं। परिणामस्वरूप वे हमेशा कागजों में ठीक बने रहना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में कहाँ तो लोक सेवक सार्थक प्रयासों की अपेक्षा नियम सम्मत प्रयासों को अधिक महत्त्व देते हैं।

विभाग के शीर्ष पर पदासीन मंत्री ही विभाग की सफलता या असफलता के लिए उत्तरदायी है क्योंकि वही नीति निर्माता भी है। सिद्धान्त किसी भी मंत्री को अपनी असफलताओं के लिए लोक सेवकों को उत्तरदायी नहीं ठहराना चाहिए लेकिन ऐसा कई बार

हुआ है जबकि मंत्री सार्वजनिक रूप से सचिवों पर छींटाकशी करते हैं। सचिवों की बाध्यता यह है कि वे जनता के बीच या विधायिका में जाकर अपनी स्थिति स्पष्ट नहीं कर सकते हैं। इस परिस्थिति का परिणाम यह होता है कि दोनों ओर से जवाबदेयता में कमी आती है तथा अविश्वास का क्षेत्र बढ़ता है। लोक सेवकों की कार्यप्रणाली अस्थिर सरकारों के कारण भी प्रभावित होती है। ऐसे में लोकसेवकों की जवाबदेयता और भी कम हो जाती है। लोक प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए मंत्री तथा लोक सेवक दोनों ही समान रूप से उत्तरदायी हैं किन्तु लोक सेवकों की असहयोगी प्रवृत्ति के समय मंत्री चाहकर भी उन्हें पदमुक्त नहीं कर सकता है जबकि प्रशासनिक असफलता के समय सम्बन्धित मंत्री को संसद या विधासभा में उत्तरदायी रूप से प्रश्नोत्तर देना होता है। विवादों की स्थिति में राजनेताओं की इच्छा ही सर्वोपरि रहती है क्योंकि सत्ता में रहते हुए वे सरलतापूर्वक सचिव का स्थानान्तरण करवा देते हैं। विवाद या संघर्ष की इन स्थितियों में कई बार लोक सेवक प्रेस के माध्यम से मंत्री के विरुद्ध मोर्चा भी लेते देखे गये हैं।

मंत्री - लोकसेवक विवाद

क्र. सं.	राजनीतिज्ञों का पक्ष	लोकसेवकों का पक्ष
1.	भारतीय लोक सेवक परिणामोन्मुखी नहीं हैं ।	बहुधा सरकारी कार्यक्रम राजनीतिक उद्देश्यों से बनवाये जाते हैं। ऐसे में उनकी सफलता संदिग्ध बनी रहती है।
2.	जनप्रतिनिधि होने के कारण कुछ तात्कालिक निर्णय, नियमों से हटकर भी लेने होते हैं।	नियम विरुद्ध कार्य करने से गलत परम्परा का विकास होता है जो अंतत: प्रशासनिक अव्यवस्था को जन्म देता है।
3.	प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा फाइलें जटिल तथा उलझे हुए रूप में प्रस्तुत की जाती हैं। अत: निर्णय लेना कठिन हो जाता है।	राजनीतिज्ञों के पास समय भाव रहता है। प्राय: वे पूर्ण तन्मयता तथा इच्छा से विभागीय कार्य नहीं निबटाते हैं।
4.	लोक सेवक, मंत्री के आदेशों की अवहेलना करते रहते हैं।	राजनीतिक द्वेष तथा विवादों के कारण कुछ मंत्री गलत कार्य करवाना चाहते हैं जो संभव नहीं होते।
5.	प्रशासनिक असफलता के लिए उत्तरदायी लोकसेवक (सचिव) को दण्डित (पदमुक्त) नहीं कर सकते हैं।	मंत्रियों द्वारा सार्वजनिक रूप से सचिवों को बदनाम किया जाता है जबकि सचिव चाहकर भी जनता, प्रेस तथा विधायिका में अपना पक्ष नहीं रख सकते।
6.	विभाग की समस्त गतिविधियों की अन्तिम जिम्मेदारी मंत्री की है। उसे ही विधायिका में प्रश्नोत्तर देना होता है। जबकि लोक सेवक गलतियाँ करते हैं।	मंत्री के नितांत गलत निर्णयों पर भी चुनौती नहीं दे सकते हैं। केवल अपना पक्ष मंत्री को समझा सकते हैं।

7. लोकसेवक गोपनीयता को अधिक महत्त्व देते हैं।	अधिकांश नीतियाँ राजनीतिक दल द्वारा ही निर्धारित होती हैं जो सम्बन्धित विभाग के लोक सेवकों को तो कार्यान्वित करनी होती हैं।

समाधान—विकास की राह पर अग्रसर भारत में राजनेताओं तथा प्रशासनिक अधिकारियों का आपसी सामंजस्य नितांत आवश्यक है। जहाँ लोक सेवक, सरकारी कार्यक्रमों को प्रशासन के माध्यम से सफलतापूर्वक कार्यान्वित करवा सकते हैं,वहीं राजनेता जनसाधारण की अपेक्षाओं के अनुरूप नीति निर्माण तथा तंत्र पर नियंत्रण स्थापित कर सकते हैं। लोकतंत्र में जनता ही सम्प्रभु है क्योंकि वह अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से प्रशासन पर नियंत्रण करवाती है। नौकरशाही जिसे ''नवीन निरंकुशता'' भी कहा जा रहा है, को निर्देशित तथा नियंत्रित करने के लिए निस्संदेह योग्य एवं सत्यनिष्ठ राजनेताओं की मंत्री के रूप में महती आवश्यकता है। इसी प्रकार मंत्री को नीति निर्माण तथा निर्माण प्रक्रिया में परामर्श देने एवं कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए लोक सेवकों की आवश्कता है अत: इन दोनों के मध्य समुचित समन्वय तथा सामंजस्य निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

1. लोकसेवकों की जवाबदेयता पूर्णत: विभाग के मंत्री के प्रति सुनिश्चित होनी चाहिए तथा मंत्री की जवाबदेयता संसद/विधानसभा तथा जनता के प्रति हो। इस सम्बन्ध में जनता की सहभागिता बढ़ाने के लिए जनप्रतिनिधियों को वापिस बुलाने (रिकॉल) व्यवस्था कुछ यूरोपीय देशों की तरह भारत में भी आरम्भ होनी चाहिये। यदि जनसाधारण को लगे कि उनका प्रतिनिधि सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर रहा है अथवा लोक सेवकों के साथ मिलकर भ्रष्टाचार में लिप्त है तो उसे पद पर रहने का अधिकार ही न हो अत: रिकॉल के माध्यम से वह पाँच वर्ष के कार्यकाल से पूर्व ही वापिस आ जाना चाहिये। इस व्यवस्था से राजनेता एवं प्रशासनिक अधिकारी दोनों में कार्यकुशलता बढ़ सकेगी।
2. मंत्रीपद का उत्तरदायित्व देने से पूर्व राजनीतिज्ञों को प्रशासनिक प्रक्रियाओं का समुचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। मंत्री की व्यक्तिगत क्षमताओं तथा रुचियों के आधार पर ही विभागों का आवंटन होना हितकर रहता है लेकिन व्यवहार में अन्य कई कारक इसमें बाधा पहुँचाते हैं। संसदीय समितियों तथा अन्य जाँच आयोगों में नये राजनेताओं को संलग्न कर प्रशिक्षित किया जाना भी श्रेष्ठ उपाय है।
3. लोकसेवकों की जवाबदेयता तथा सक्रियता बढ़ाने के लिए उन्हें एक विभाग से दूसरे विभाग में शीघ्र ही स्थानान्तरित नहीं करना चाहिए। एक स्थान पर दीर्घावधि तक रहने वाला सचिव ही दूरगामी योजनाएँ एवं कार्यक्रम रुचिपूर्वक सुनिश्चित कर सकता है।
4. मंत्री-लोकसेवक के मध्य संघर्ष या विवाद की स्थिति उत्पन्न होने पर तुरंत प्रधानमंत्री तथा केबिनेट सचिव (यदि राज्य हो तो मुख्यमंत्री तथा मुख्य सचिव के साथ) के साथ वार्ता करके समाधान के प्रयास किये जाने चाहिये।
5. लोक सेवकों में व्याप्त परम्परागत नौकरशाही अहं तथा प्रशासनिक कठोरता को कम करने के लिए आई.ए.एस. प्रशिक्षण पद्धति में परिवर्तन लाया जाना चाहिये। समाचार

-पत्रों तथा सभा समारोहों में सामने आने वाले विचारों के आधार पर सामाजिक परिवर्तनों का अनुमान लगाकर समयानुकूल सेवाकालीन प्रशिक्षण लोक सेवकों को दिया जाना चाहिये।

6. मंत्री लोक सेवक के मध्य सामंजस्य बढ़ाने तथा अन्तर्सम्बन्धों को व्यावहारिक बनाने के लिए दोनों को "आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर लेबोरेट्री" में मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।

7. **प्रशासनिक सुधार आयोग** ने इस क्रम में निम्न सुझाव प्रस्तुत किये थे—[9]

(1) यदि मंत्री, सचिव के सुझाव से असहमत हो या किसी प्रकरण पर सरकार की सुस्पष्ट नीति न हो तो ऐसी स्थिति में समस्त निर्णयों को कारण सहित लिखना चाहिये।

(2) दोनों के मध्य भययुक्त, विश्वासपूर्वक तथा न्यायोचित व्यवहार होना चाहिये।

(3) गंभीर प्रकृति की भूल या कुशासन के अतिरिक्त अन्य मामलों में मंत्री को चाहिये कि वह प्रशासन में हस्तक्षेप न करे।

(4) नौकरशाहों को चाहिये कि वे मंत्रियों की राजनीतिक व्यवस्था को समझें तथा तदनुसार सहयोग करें।

(5) प्रधानमंत्री को चाहिये कि वह मंत्री तथा सचिव के मध्य सम्बन्ध सुधारने की ओर ध्यान दें।

निष्कर्षत: भारतीय नौकरशाह की स्थिति घोड़े जैसी है जिस पर मंत्री, सवार के रूप में बैठता है। अब यहाँ न तो घोड़ा अपनी इच्छा से सवार को कहीं ले जा सकता है और न ही सवार चाबुक मार कर घोड़े को किसी विशिष्ट स्थान पर चलने को बाध्य कर सकता है। दोनों के मध्य समझ-बूझ और सहयोग ही एकमात्र रास्त है।[10]

प्रशासनिक भ्रष्टाचार

भारतीय प्रशासन में सच्चरित्रता (इण्टेग्रिटी) तथा नैतिकता (एथिक्स) की स्थापना एक विषम समस्या है। समसामयिक राजनीतिक-प्रशासनिक परिदृश्य में नैतिकता एवं ईमानदारी दुर्लभ प्रवृत्ति का रूप लेती जा रही है। बीसवीं सदी का अन्तिम दशक भारतीय राजनीति में "घोटाला काल" के रूप में जाना जाएगा, ऐसा मत प्रकट किया जाता है। सच्चरित्रता का विलोम "भ्रष्टाचार" एक सामान्य एवं आवश्यक घटना बन चुका है। सार्वजनिक प्रशासन में सच्चरित्रता के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए प्रथम पंचवर्षीय योजना में कहा गया था—"सार्वजनिक मामलों एवं प्रशासन में सच्चरित्रता होना आवश्यक है, अत: प्रत्येक सार्वजनिक कार्य सम्बन्धी शाखा में इस पर बल दिया जाना चाहिये। भ्रष्टाचार का दुष्प्रभाव बहुत व्यापक होता है। इसके फलस्वरूप न केवल ऐसी गलतियाँ होती हैं जिनको सुधारना कठिन हो जाता है बल्कि यह प्रशासनिक ढाँचे की जड़ों एवं प्रशासन में जनता के विश्वास को ही हिला देता है, अत: प्रशासन में भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक निरन्तर चलने वाला युद्ध छेड़ देना चाहिये।[11]

भ्रष्टाचार एक विश्वव्यापी तथा परम्परागत समस्या है। कौटिल्य का कहना था—"सार्वजनिक कर्मचारियों द्वारा सरकारी धन का दुरुपयोग न करना उसी तरह असंभव है जिस तरह कि जीभ पर रखे शहद को न चखना। जिस प्रकार पानी में तैरती मछली कब दो बूँद